International Journal of Applied Research 2015; 1(2): 294-295

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(2): 294-295
www.allresearchjournal.com
Received: 03-12-2014
Accepted: 07-01-2015

डॉ. सुशील निम्बार्क
सह आचार्य चित्रकला, राज मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुशील निम्बार्क
सह आचार्य चित्रकला, राज मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान, भारत

सांस्कृतिक पुष्ठता में राजस्थानी राजवंशों का योगदान

डॉ. सुशील निम्बार्क

प्रस्तावना

राजस्थान की प्राचीन भौगोलिक स्थिति पर भी यहाँ सामान्य अध्ययन इसलिये आनुशंगिक है कि इस प्रदेश की संस्कृति का जो अविच्छिन्न प्रवाह है, तथा जिसने यहाँ की कला को प्रभावित किया है, उसकी पूर्वापर निरन्तरता को भी हम अपनी दृष्टि से ओझल न होने दें। राजपूताना के तहत विद्यमान जिन छोटी–बड़ी रियासतों का विलय होने के बाद वर्तमान राजस्थान के भौगोलिक परिदृष्य में बदलाव आना तो स्वाभाविक ही था, उनकी राजनीतिक परिस्थितियों में भी बदलाव आये बिना नहीं रहा। शासन के स्तर पर जो परिवर्तन अनायास हुए, उनसे बरसों से चली आ रही परम्पराएँ भी बदलती देखी गईं तो नई परम्पराओं का प्रवर्तन भी होता देखा गया। सांस्कृतिक बदलाव अपने प्रभाव को लेकर बहुत दबे पाँव आता है। अतएव खान–पान, रहन–सहन आदि में रियासती समय के रीति–रिवाज, बोल–चाल के अदब–अन्दाज, पहनावा आदि में बदलते रंगढंग देखे जाने लगे।

राजपूताना के अन्तर्गत गिने जाने वाले बड़े–बड़े राज्यों और उनके क्षेत्रों का प्राचीन काल में अपने नाम के साथ जहाँ अपना अस्तित्व था, वहाँ उनकी अपनी सीमाएँ और उनकी शासन–व्यवस्थाएँ भी अपनी थीं तथा उनकी संस्कृतियाँ भी अपनी थीं। उदाहरणार्थ बीकानेर और जोधपुर का क्षेत्र महाभारत काल में 'जांगलप्रदेश' के नाम से प्रसिद्ध था तो विरल समय में 'कुरुजांगला' और 'माद्रेय जांगला' के नाम से भी जाना जाता था। इतिहासकारों के अनुसार यह क्षेत्र 'कुरु' और 'मद्र' के पड़ौसी देशों के नाम से जुड़ा रहा होगा। परवर्ती समय में इसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर – वर्तमान नागौर – मानी जाती रही। संभवतः बीकानेर के राज्य–चिन्ह में इसी परम्परा की स्मृति में 'जय जंगलधर' अंकित होता रहा। जांगल देश का पार्ष्ववर्ती भू–भाग 'सपादलक्ष' कहलाता था, जो लम्बे समय तक चौहानों के अधिकार में रहा। यहाँ के शासक 'सपादलक्षीय नृपति' के नाम से जाने जाते थे। इनके राज्य का विस्तार होने पर इनकी राजधानी साँभर (शाकम्भरी) में स्थापित हो गई। इनकी उपाधि तंब से 'शाकम्भरीश्वर' बन गई। कालान्तर में यह चौहानों की राजधानी साँभर से स्थानान्तरित होकर अजमेर स्थापित हो गई थी।

यही स्थिति राजपूताना की अन्य अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली रियासतों की थी। अलवर राज्य का उत्तरी हिस्सा कुरुदेष के अन्तर्गत था तो दक्षिणी भाग पश्चिमी मत्स्य देश के तहत था। इसी तरह पूर्वी हिस्से भी शूरसेन के तहत थे। शूरसेन प्राचीनकाल में उत्तरी भारत के बड़े राज्यों में से था, जिसकी राजधानी मथुरा थी और उसने अपनी लम्बी–चौड़ी सीमा में अनेक आंचलिक क्षेत्रों को समेट रखा था।

मेवाड़ भी राजपूताना क्षेत्र का जाना–माना राज्य था। यह 'मेदपाट' नाम से भी प्राचीन साहित्य और शिलालेखों में उल्लिखित रहा। माना जाता है कि 'मेदपाट' शब्द ही 'मेवाड' का संस्कृत रूप रहा। मेवाड़ शब्द का प्राचीनतम उल्लेख ग्यारहवीं शताब्दी में मिलता है। मेवाड़ की राजधानियाँ कई जगह रहीं, जिनमें नागदा, आहाड़, चित्तौडगढ़, कुम्भलगढ, गोगून्दा, चावण्ड, उदयपुर आदि प्रमुख स्थान हैं। मेवाड़ क्षेत्र का प्राचीन नाम 'शिविजनपद' मिलता है, जिसकी राजधानी चित्तौड के निकट मज्झमिका (नगरी) नामक स्थान पर थी। मज्झमिका में मेव जाति के लोगो का प्रभुत्व था। इस कारण यह प्रदेश मेदपाट कहा जाने लगा। मेदपाट शब्द के अर्थ के पीछे यह भी कहा जाता रहा कि यहाँ के शासकों का म्लेच्छों से लम्बा संघर्श चला। इस कारण यह प्रदेश 'म्लेच्छों' को पाटने यानि नश्ट करने वाला रहा और इस कारण यह मेदपाट नाम से प्रसिद्धि में आ गया। डूँगरपुर, बाँसवाड़ा क्षेत्र का अपना इतिहास है। यहाँ के सांस्कृतिक परिवेश ने राजस्थानी कला को अपने ढंग से प्रभावित किया है। यह क्षेत्र आरम्भ में 'वागड' नाम से जाना जाता था। इसी तरह सिरोही राज्य का भू–भाग अर्बुद (आबू) देश में गिना जाता था। जैसलमेर 'माँड' देश कहलाता था , जिसके नाम पर राजस्थान का सुप्रसिद्ध रजवाड़ी संगीत 'माँड' न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी प्रसिद्ध राग के नाम से आज भी गाया जाता है। माँडराग में गाये जाने वाले अनेक रजवाड़ी गीतों ने यहाँ की चित्रकला पर अपनी छाप छोड़ी है।

निष्कर्षतः

राजस्थान का 'राजपूताना' नाम से कहा जाने वाला यह पुरातन भू–भाग आज तक अपनी पुरातन ऐतिहासिक स्मृतियों के अवशेषों को किसी न किसी परम्परागत रूप में सुरक्षित रखते हुए यहाँ तक चला आया है। इस धरती की यह ऐतिहासिक विशेषता महाभारत एवं पुराण युग की संस्कृति की सनातन बहती संस्कृति की धारा को अविच्छिन्न रूप में आज के राजस्थान की संस्कृति से जोड़ती स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

राजस्थान की यह अतीत की समृद्धि इस प्रदेश की नानाविध परम्पराओं को जहाँ पुष्ट बनाती हुई तथा नये जीवन से संस्कारित और पुनर्जीवित करती देखी जाती है, वहाँ अपने मूलरूप से विलग न होकर अपनी विरासत को नष्ट होने से बचाती रही है। राजस्थान अथवा राजपूताना की संस्कृति के अक्षुण्ण प्रवाह की जो यह एक विशेषता रही है, उसने समय–समय पर बदलते इस प्रदेश के भूगोल और इतिहास की विशमताओं से उत्पन्न होती विद्रूपता को आत्मसात् करते हुए अपने विकास की परम्परा को न टूटने दिया और न ही विकृत होने दिया। अतएव इतिहासकारों ने राजस्थान की संस्कृति की इस मूल चेतना को यहाँ की संस्कृति का प्राणतत्त्व कहा है।

कहा जाता है कि इस पुरातन भौगोलिक स्थिति के नये संस्करण ने ही राजस्थान के पूर्व–मध्ययुगीन इतिहास और संस्कृति को जन्म दिया है। इस बदलते परिवेश में भौगोलिक स्थिति में तो उतना परिवर्तन नहीं देखा गया, किन्तु इतिहास और उसके साथ संस्कृति विशेष रूप से प्रभावित होकर राजस्थान की इस धरती के नूतन मानचित्र की रचना में प्रवृत्त होते देखे जाते हैं। यही कारण है कि पूर्व–मध्ययुगीन राजस्थान और उसकी संस्कृति अपने पुरातन रूप–स्वरूप से बहुत हटकर परिलक्षित होते हैं। और तो और, अधुनातन विकास के दौर में बदलती धरती के रंग–ढंग के साथ यहाँ की संस्कृति जिस तेजी से नया रूपा लेने लगी है, उसे भी कैसे भूला जा सकता है ?

संदर्भ

1. डॉ. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, द्वितीय संस्करण
2. डॉ. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, राजस्थानी ग्रन्थागार, द्वितीय संस्करण
3. डॉ. जी.एन.शर्मा, राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, संशोधित संस्करण
4. डॉ. रिता प्रताप, राजस्थान की चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, रा.हि.ग्र.अ. जयपुर